स्कूली विज्ञान पर बच्चों का नज़रिया

पदमा सारंगपाणि

यह शोधकार्य दिल्ली के पास के एक गांव अलीपुर में किया गया था। इसका उद्देश्य इस बात की जांच-पड़ताल करना थी कि स्कूली विज्ञान की किताबों को जिन लक्ष्यों को सामने रखकर लिखा जाता है, उन लक्ष्यों में से कितने स्कूलों, कक्षाओं और शिक्षकों के माध्यम से बच्चों तक पहुंच पाते हैं? जिन उद्देश्यों को ध्यान में रखकर स्कूली पाठ्यक्रम में विज्ञान का समावेश किया गया, क्या उनकी पूर्ति हो पा रही है?

भाषा और गणित के बाद यदि पाठ्यक्रम में कोई विषय महत्वपूर्ण माना जाता है तो वह है विज्ञान। स्कूल में विज्ञान की पढ़ाई के साथ यह बात गहराई से जुड़ गई है कि इससे लोगों में एक वैज्ञानिक और तर्कसंगत मानसिकता आएगी। ये दोनों ही बातें राष्ट्रीय मूल्यों की श्रेणी में मानी जाती हैं और इनको बढ़ावा देना बहुत

ज़रूरी माना जाता है। स्कूली विज्ञान के साथ एक और धारणा भी अभिन्न रूप से जुड़ी हुई है – कि प्रगति करने के लिए तकनीकी विकास बहुत महत्वपूर्ण है। विज्ञान का पाठ्यक्रम बनाने के पीछे जो भी सोच और विचार है, उसमें ये भावनाएं अंतरंग रूप से शामिल हैं। इनका ज़िक्र न सिर्फ महत्वपूर्ण दस्तावेज़ों में साफ तौर पर किया जाता है पर ये प्राथमिक शाला की पुस्तकों में भी छपी हुई मिलती हैं।

विज्ञान से जुड़े मूल्य

* अपने आसपास की चीज़ों और बातों को लेकर जिज्ञासु बनो।
* सभी मान्यताओं और तौर-तरीकों पर सवाल करने का साहस रखो।
* प्रश्न पूछो – 'क्या', 'क्यों', 'कैसे' – और इनका उत्तर पाने के लिए ध्यान से अवलोकन करो, प्रयोग करो, चर्चा करो, तर्क करो।
* अपनी प्रयोग शाला में या बाहर तुमने जो भी प्रयोग किए उन्हें सच्चाई के साथ दर्ज़ करो।
* ज़रूरत हो तो अपने प्रयोगों को दोहराओ पर किसी भी हालत में उनके परिणामों को तोड़ने-मरोड़ने की कोशिश मत करो।
* हमेशा तथ्यों व तर्कों के आधार पर सोचो। किसी भी एक पक्ष के साथ पूर्वाग्रह मत रखो।
* अपनी मेहनत और लगन के बल पर नई खोज और आविष्कार करो।

(राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद द्वारा कक्षा तीसरी, चौथी एवं पांचवीं के लिए तैयार की गई पर्यावरण अध्ययन की पाठ्यपुस्तकों से।)

इन मूल्यों को बच्चों के लिए सीधे निर्देशों व उपदेशों के रूप में पेश किया जाना मुझे विचलित करता है। और हमें यह भी सोचने पर मजबूर करता है कि बच्चे खुद इन भावनाओं को किस तरह लेते हैं?

मैंने 1992-93 में दिल्ली के नज़दीक बसे एक गांव के स्कूल में कुछ शोध किया था। इसमें मैंने बच्चों और शिक्षकों से बात करके, उन्हें काम करते देख यह जानने की कोशिश की थी कि बच्चे स्कूली पढ़ाई को किस रूप में देखते हैं। मैंने कक्षा 4-5 के तकरीबन 120 बच्चों के साथ यह काम किया। इसी संदर्भ में मैंने बच्चों से ऐसे सवाल भी पूछे थे – "तुम्हें विज्ञान क्यों पढ़ना चाहिए, विज्ञान विषय क्या है, प्रयोग क्या है, वैज्ञानिक कौन होते हैं और क्या करते हैं?" इन सवालों के जवाब में बच्चों ने जो

कहा उनमें से कुछ किस्सों के उद्धरण मैं यहां दूंगी। ये उद्धरण हमें बच्चों में आमतौर से पाए जाने वाले नज़रिए की जानकारी देते हैं। कुछ उद्धरण अपवाद भी हैं और मैंने उन्हें अलग से बताया है।

विज्ञान क्यों पढ़ना चाहिए?

– "तुम विज्ञान क्यों सीखते हो?"
"क्योंकि हमें कभी वैज्ञानिक भी बनना पड़ सकता है?"

यह बात दिखाती है कि बच्चे वैज्ञानिक के रूप में रोज़गार पाने को विज्ञान पढ़ने का एक प्रमुख मकसद मानते हैं। यह संबंध विज्ञान और वैज्ञानिक शब्दों से सीधे ही निकलता है। 'वैज्ञानिक' शब्द सीधे तौर पर एक तरह के रोज़गार का आभास देता है।

– "विज्ञान क्यों पढ़ाया जाता है?"
नीरज, "अरे सतीश, वो हमें विज्ञान क्यों पढ़ाते हैं?"
सतीश, "हमें पेड़-पौधों के बारे में बताने के लिए।"
नीरज, "ताकि हम वैज्ञानिक बन सकें।"
– "और सामाजिक अध्ययन?"
"उसी लिए।"

बच्चे भाषा की किताब में दो वैज्ञानिकों मैडम क्यूरी और जे.सी. बोस के बारे में भी पढ़ते हैं। वैज्ञानिक बनने के अलावा, डॉक्टर बनने की संभावना भी विज्ञान की पढ़ाई से जोड़ी जाती है। विपिन मुझे बता रहा था कि उसे विज्ञान अच्छा नहीं लगता।

– "अगर तुम्हें विज्ञान अच्छा नहीं लगता तो इसे क्यों पढ़ते हो?"
विपिन, "क्योंकि हमें पढ़ना पड़ता है।"
– "क्या तुम्हें विज्ञान पढ़ने में कोई फायदा दिखाई देता है?"
"हां, क्योंकि फिर हम वैज्ञानिक या डॉक्टर बन सकते हैं।"

कुछ बनने की यह बात तो दूर की बात थी। ज़्यादातर बच्चे अभी विज्ञान इसलिए पढ़ रहे थे क्योंकि उन्हें पढ़ना होता था। जैसा विपिन कह रहा था। फिर, यह बात भी थी स्कूल की परीक्षाओं में व स्कॉलर-शिप की परीक्षाओं में विज्ञान पर प्रश्न आते हैं। इसलिए, यह 'ज़रूरी' ज्ञान बन जाता है।

यह सब जानना क्यों ज़रूरी है – जैसे राकेश शर्मा के बारे में यह जानना; और सदाबहार वन के बारे में क्यों पढ़ते हैं?

तो एक ही जवाब है – कि गुरुजी हमसे पूछेंगे। इन्सपेक्टर भी हमसे पूछ सकता है। और ये पांचवीं की बोर्ड परीक्षा में भी आ सकता है।

मैंने बातचीत आगे बढ़ाते हुए पूछा, "नहीं, पर तुम खुद जब बड़े हो जाओगे, और कोई काम करोगे, जैसे चित्रकारी, तब क्या विज्ञान तुम्हारे कुछ काम आएगा?"

इस पर विपिन मुस्कुराया और बोला, *"हम लोगों को चकमा दे सकेंगे। जैसे मैं एक बाल्टी में दूध भर दूंगा और लोगों से कहूंगा कि देखो अब मैं एक जादू करूंगा – और बाल्टी से एक बूंद भी नहीं गिरेगी। फिर मैं छू-मंतर कहकर बाल्टी घुमाकर दिखा दूंगा।"*

इस तरह की बातचीत से ज़ाहिर होता है कि विपिन को अपने भावी जीवन में विज्ञान की कोई सार्थकता नज़र नहीं आती थी सिवाय इसके कि वह विज्ञान की मदद से लोगों का मनोरंजन कर सकेगा। ज़्यादातर बच्चे तो अपने जीवन में विज्ञान की सार्थकता को और भी कम देख पा रहे थे। वे यह सोचते थे कि अगर कोई चीज़ पाठ्यक्रम में है तो उसकी कोई उपयोगिता होगी ही।

"क्या मालूम हमें बाद में अपनी नौकरी में इस सबकी ज़रूरत पड़ जाए?" देवेंदर ने कहा।

– "इस तरह की पढ़ाई नौकरी में कैसे काम आ सकती है?"

"भई, अगर कोई चिट्ठी आती है तो हमें पढ़ना तो आना चाहिए।"

– "हां, और विज्ञान व सामाजिक अध्ययन?"

"आगे जाकर ज़िंदगी में किसी काम आ सकते हैं।"

भाषा और गणित की कुशलता उपयोगी होती है यह तो बच्चों को स्पष्ट था, पर पाठ्यक्रम की अधिकांश बातों पर उनके मन में एक गूढ़ विश्वास था। वो यह महसूस करते थे कि अगर बड़े लोगों ने कुछ बातें पढ़ाने के लिए चुनी हैं तो इसके पीछे कोई अच्छे कारण रहे ही होंगे।

जब जोगी ने मेरे सामने यह घोषणा की कि विज्ञान तो जीवन के लिए ज़रूरी है तो मैंने सोचा कि वह यह बताना चाह रहा है कि विज्ञान ने मानवता की भलाई के लिए कैसे योगदान किया है। मैं कहूंगी कि यह स्कूली विज्ञान का 'कल्याणकारी' आयाम है – जो विज्ञान को, या दरअसल तकनॉलॉजी को 'प्रगति' और 'विकास' में सहायक मानता है।

यह विचारधारा विज्ञान की किताबों में दर्ज़ पाई जाती है और पढ़ने वालों को एक दृष्टिकोण देने की कोशिश करती है। एन. सी. ई. आर. टी. की किताबों के आमुख में लिखा है कि "इस बात का खास-तौर पर ख्याल रखा गया है कि

बच्चों को मौजूदा समस्याओं के बारे में सोचने का बढ़ावा मिले और ऐसे कामों की पहल करने में मदद मिले जिससे व्यक्ति और समुदाय का जीवन बेहतर बन सके।''

किताब के हर पाठ में कुछ अच्छी बात सीखने और अच्छे काम करने की बात उभर आती है, चाहे तो अपने आसपास मोहल्ले में सफाई रखने की बात हो या संतुलित भोजन खाने की बात हो। यह दिलचस्प बात थी कि विज्ञान के ये कल्याणकारी आयाम जो मान्य पाठ्यक्रम में प्रमुख थे, बच्चों की नज़र में गायब थे। वे इन्हें विज्ञान पढ़ने के कारणों के रूप में आत्मसात नहीं कर रहे थे। वे कुल मिलाकर पढ़ाई को और विज्ञान को भी नौकरी से जुड़ी हुई बात मानते थे।

प्रयोग क्या हैं?

विज्ञान में जानकारी तक पहुंचने के लिए प्रयोगों की एक बड़ी अहम भूमिका रही है। बल्कि विज्ञान की प्रगति प्रायोगिक विधि के विकास के साथ ही हो पाई है। प्रयोगों द्वारा की जाने वाली जांच-पड़ताल और सत्यापन ही विज्ञान के तथ्यों और सिद्धांतों को आधार देता है। इसलिए यह उल्लेखनीय है कि अलीपुर स्कूल के बच्चे भी प्रयोगों को विज्ञान का एक अभिन्न पहलू मानते हैं। मैंने उनसे बात की कि वे प्रयोगों से क्या समझते हैं?

मैंने पाया कि अधिकांश बच्चे यह तो जानते थे कि विज्ञान में प्रयोग किए जाते हैं, पर ऐसा क्यों करते हैं इसकी कोई समझ उनमें नहीं थी।

क्या पता?

– ''तुम विज्ञान में प्रयोग क्यों करते हो?''

दिनेश, ''क्योंकि प्रयोग दिए गए होते हैं।''

– ''फिर सामाजिक अध्ययन में प्रयोग क्यों नहीं करते?''

अभय, ''उसमें हमसे प्रयोग नहीं कराए जाते।''

दिनेश, ''सामाजिक अध्ययन में हम प्रश्नोत्तर करते हैं, फिर घर जाकर उन्हें पूरा करते हैं।''

– ''क्या प्रयोग किए बिना विज्ञान पढ़ाया जा सकता है?''

दोनों, ''नहीं।''

– ''क्यों?''

अभय, ''पता नहीं।''

कुछ बच्चों ने प्रयोगों को लेकर 'कुछ करने' यानी चीज़ों से कुछ क्रियाएं करके देखने और उनके नतीजे देखने के पहलू की तरफ भी

इशारा किया।

''विज्ञान में प्रयोग करते हैं।''

– ''क्यों?''

''देखो, वे कहते हैं न, यह करो, फिर यह करो। आप कल मेरे घर आना, मैं आपको एक प्रयोग दिखाऊंगा। एक गिलास लो। एक कागज़ को गुड़ी-मुड़ी करके उसमें भर दो.....।'' (वह हवा के होने और जगह घेरने के प्रयोग का ब्यौरा बताता है)

– ''यह तुमने कहां सीखा?''

''कांता मैडम ने हमें यह करके दिखाया था।''

– ''यह प्रयोग क्यों किया था उन्होंने?''

''पता नहीं।''

– ''इससे तुमने क्या सीखा?''

उसने कंधे उचका दिए।

जोगी की समझ में प्रयोग एक गतिविधि है। प्रयोग में जो देखा जा रहा है, उसकी व्याख्या करते हुए किसी बात को समझना ही उद्देश्य होता है, यह धारणा उसके मन में नहीं थी।

भाषा की किताब में मैडम क्यूरी पर जो पाठ था उसमें रेडियम की खोज और उसकी जीवन में उपयोगिता पर चर्चा थी। यह भी कहा गया कि क्यूरी ने अपनी खोज के सिलसिले में बहुत से प्रयोग किए। पर, इस बात का कोई संकेत नहीं था कि ये प्रयोग किस तरह के थे या इनमें क्या किया गया था।

– ''मैडम क्यूरी ने रेडियम की खोज कैसे की होगी – तुम्हें क्या लगता है?''

विपिन, ''उन्हें विज्ञान पसंद था।''

– ''क्या तुम्हें लगता है कि उन्होंने प्रयोग किए होंगे?''

विपिन, ''शायद ... पहले द्रव इधर से उधर ..... फिर उधर से इधर।''

विपिन का कथन किताब में क्यूरी के प्रयोगों के धुंधले प्रस्तुतिकरण को दर्शाता है। सभी बच्चे एक कथन, एक वाक्य के रूप में यह पक्की तौर पर जानते थे कि प्रयोग वैज्ञानिक अध्ययन के लिए निहायत ज़रूरी हैं। लेकिन इस कथन का मतलब शायद ही किसी बच्चे को स्पष्ट था। मुझे लगता है कि 'खोज' शब्द से भी कुछ भ्रांति पनपती होगी। यही शब्द शोध के लिए, ढूंढने के लिए व आविष्कार के लिए इस्तेमाल होता है। कभी-कभी जब बच्चे यह कहते थे कि वैज्ञानिकों ने किसी बात का खोज करके पता लगाया तो मैं सोचने लगती हूं कि कहीं वे इसे शब्दशः तो नहीं समझ रहे कि कुछ चीज़ पहले से थी। उसे वैज्ञानिकों ने बस ढूंढ

लिया है?

उपयोगी चीज़ का आविष्कार

वैज्ञानिक 'प्रयोग' करते हैं, इस कथन में 'प्रयोग' शब्द के एक दूसरे अर्थ की ध्वनि भी निकलती है – "किसी चीज़ को इस्तेमाल या उपयोग में लाना।" किसी चीज़ को प्रयोग करना ऐसा हम कहते हैं। इससे भी शब्दशः यह अर्थ निकलता है कि 'प्रयोग' यानी किसी चीज़ को इस्तेमाल में लाना।

नवीन, "प्रयोग मतलब जब हम कुछ नया बनाते हैं – फिर उसे प्रयोग में लाते हैं। तब वह प्रयोग हो जाता है। आपको मालूम है न, वैज्ञानिकों ने कितनी सारी चीज़ें बनाई हैं – चश्मा, टेलीफोन – इस तरह की और चीज़ें।"

"विज्ञान तो एक कला है। वैज्ञानिक अपने दिमाग से काम करते हैं।"

– "ठीक। लेकिन प्रयोग क्या है?"

"किसी चीज़ को प्रयोग लाना। वैज्ञानिक बहुत-सी चीज़ें प्रयोग में ले आए हैं जैसे पंप।"

वैज्ञानिक उपयोगी चीज़ों का आविष्कार करते हैं – इस धारणा से बच्चे परिचित थे। उनकी किताब भी उन्हें साफ तौर पर यह संदेश देती है कि वैज्ञानिक आविष्कारों और खोजों से मानव की प्रगति में कितनी सहायता मिली है। इससे यही संकेत मिलता है कि प्रयोग करने का अर्थ है कुछ उपयोगी बनाना।

प्रमाणत करना

चाहे क्यूरी के प्रयोगों के बारे में बच्चों की समझ बड़ी ही धुंधली रही हो, विपिन और कुछ और बच्चों की अपनी मानसिक क्रियाओं में यह आभास नज़र आता है कि वे प्रयोगों को ज्ञान हासिल करने की एक विधि के रूप में जानते हैं। यह मुझे ऐसे समझ में आया कि एक बार मैंने विपिन से कहा, "अगर 50 बार सिक्का उछाला जाए तो 25 बार चित आएगा और 25 बार पट।" इस पर विपिन एक सिक्का उछालकर देखने लगा और परिणामों का हिसाब भी बारीकी से रखने लगा। फिर उसने मुझे समझाते हुए कहा, "हम यह इसलिए कर रहे थे ताकि कुछ प्रमाणित कर सकें। यह बस एक प्रयोग था।"

एक ही और बच्चा था जो प्रयोग के इस पहलू से वाकिफ नज़र आता था। मैंने नरेश के सामने एक कथन रखा, "अगर पौधों को सींचने के लिए नमक का पानी डाला जाए तो वे अच्छी तरह बढ़ेंगे।"

नरेश, "ऐसी बात आज तक नहीं

सुनी मैंने।''

– ''तो तुम कैसे पता लगाओगे?''

वह सपाट, आवाज़ में बताने लगा: *''पहले-हम-दो-गमले-लेंगे। हम-एक-गमले-में ..... (वह प्रयोग का वर्णन करता है) फिर-हम-दोनों-में-फर्क-देख-सकेंगे।''*

–''तुम दो गमले क्यों लोगे?''

''नहीं तो हमें पता कैसे लगेगा? दो चीज़ों में फर्क तो दिखाना पड़ेगा न? यही तो विज्ञान की चीज़ है।''

– ''ऐसा क्यों कह रहे हो?''

''हमने यह प्रयोग किया था, पता लगाने के लिए''

– ''पर जो बात किताब में लिखी होती है वो सच मानी जाती है। फिर प्रयोग क्यों करना होता है?''

''हम अपनी आंखों के सामने देखना चाहते हैं, इसलिए फिर हम वह बात कभी भूलेंगे नहीं। हमें याद रहेगी। और वो परीक्षा में आ गई तो?''

नरेश की सपाट आवाज़ ध्यान देने योग्य है। अक्सर प्रश्नों का जवाब देते हुए बच्चे इस तरह की आवाज़ में बोलते हैं। यह आवाज़ एक स्पष्ट आभास देती है – कि जो कहा जा रहा है – वो याद करके कहा जा रहा है। वह कहते समय उनके मन में समझने-समझाने की क्रियाएं नहीं हो रहीं। पर नरेश का उत्तर उसकी अपनी तार्किक सोच को दिखा रहा था। उसकी आवाज़ का उबाऊ सपाटपन यह दिखा रहा था कि उसके मन में यह बात बैठी है कि याद की हुई बातें ही ज्ञान हैं और याद रखना सीखने का सही तरीका है। चीज़ें जो पहले से जानी जा चुकी हैं वे ही जानने योग्य हैं, याद करने और दोहराने योग्य हैं।

सिखाने-समझने का एक ढंग है प्रयोग

– ''क्या हम प्रयोगों के बिना विज्ञान सीख सकते हैं?''

विपिन, ''हां, जो समझना चाहते हैं वो सीख सकते हैं।''

–''क्या तुम प्रयोग करके सीखते हो?''

''बिल्कुल नहीं। हमें तो ज़रूरत नहीं पड़ती।''

विपिन की धारणा को समझने के लिए हमें देखना चाहिए कि प्रयोगों को पुस्तकों में किस परिप्रेक्ष्य से प्रस्तुत किया जा रहा है। प्रयोग किसी खोज को आगे बढ़ाने के लिए नहीं दिए जाते। किताब में तथ्यों को बयान कर दिया जाता है। जैसे – ''सभी सजीव प्राणी बढ़ते हैं।''

यह तथ्य अपने आप में एक पूरी तरह ज़ाहिर बात है। ऐसे तथ्यों को कहने के साथ प्रयोग बताने से ही विपिन के मन में यह धारणा बन

रही होगी कि प्रयोगों का मकसद कुछ पता लगाना या जानना नहीं है, बल्कि इनका मकसद कुछ और है। शायद बातों को सरल करना। यही बात कृष्ण के मुंह से भी सुनने को मिल जाती है, "जो लोग होशियार हैं वो तो प्रयोग के बिना भी समझ जाते हैं। जब आंटी लाकर कोई प्रयोग दिखाती है, तो हमें वो बात अच्छे से याद हो जाती है – पक्की तरह देख लेने पर हम उस बात को भूलते नहीं हैं।"

दूसरे कई छात्रों को यह भी लगता था कि चित्र भी 'प्रयोग' हैं। इसी तरह, तालिकाएं, रेखाचित्र आदि भी प्रयोग के समान थे। उनकी समझ में प्रयोग से तात्पर्य था वे सब चीज़ें जिन्हें 'पढ़ना' नहीं होता है, जिन्हें देखकर और अनुभव करके कोई जानकारी मिल जाती है।

जब विज्ञान की किताबों में प्रयोग महज समझने का साधन हो, तो आश्चर्य नहीं कि बच्चों के लिए वे बहुत महत्व नहीं रखते। लिखे हुए को पढ़कर भी समझा जा सकता था। और-तो-और किताबों में इतने सारे तथ्य यूं ही दिए हुए थे जिन्हें अंधविश्वास के साथ स्वीकार करना होता था। सिर्फ बड़ी सीधी और ज़ाहिर बातों के लिए प्रयोग दिए हुए थे, जिनके लिए ध्यान से प्रयोग करना और अवलोकन लेना, सच में ज़रूरी था ही नहीं। इस पूरे संदर्भ में, बड़ी बेमानी नज़र आ रही थीं वैज्ञानिक मूल्यों की बातें, जो किताबों के शुरू में दी हुई थीं।

प्रयोग: मन बहलाने का ज़रिया

अब जो उद्धरण मैं दे रही हूं उसमें सुलेमान को लगता है कि प्रयोगों से जो सच बात है उसे जांचा जा सकता है। पर कुल मिलाकर प्रयोगों का किया जाना मन बहलाने की बात ही है।

सुलेमान, "हमें जानकारी तो सिर्फ पढ़कर मिलती है।"

– "पर जो लिखने वाले होते हैं उन्हें कैसे पता चलती हैं बातें?"

"वो खोज करते हैं। फिर लिखते हैं।"

– "खोज क्यों करते हैं?"

"देखने के लिए। नहीं तो विश्वास कैसे होगा?"

– "विश्वास नहीं करना क्या बुरी बात नहीं है?"

"नहीं वो एक-दूसरे से पूछते हैं फिर हंसी-मज़ाक में कहते हैं – कि चलो प्रयोग करके दिखाओ यह बात।"

– "और फिर।"

"फिर, वो विश्वास कर लेते हैं। इससे मनोरंजन भी होता है।"

– "बस ऐसे ही प्रयोग करते रहते हैं?"

सुलेमान हंसकर जवाब देता है, "नहीं तो। उनको तो सरकार से पैसे मिलते हैं। उनको तो यह सब सरकार की तरफ से करना ही होता है।"

वैज्ञानिक कान हैं?

सुलेमान की बात से लगा कि उसके लिए वैज्ञानिक कोई बहुत ऊंचे लोग नहीं थे। वे सरकार की नौकरी में थे – विज्ञान करने के लिए। पर और बच्चों की नज़र में वैज्ञानिक देश के अच्छे नागरिक थे जो देश के लिए कई उपयोगी काम करते थे, अच्छी चीज़ें बनाते थे।

– "वैज्ञानिक क्या करते हैं?"

नीरज, "अच्छी-अच्छी चीज़ें। जैसे हम गरीब हैं। अगर कोई हमारे यहां से हार चुरा ले, तो वो उंगलियों के निशान देखते हैं और पता लगाते हैं।"

उन्हें लगता था कि प्रयोगों से भी अच्छे और बुरे का पता लगाने में मदद मिलती है। सही और गलत का नहीं, पर 'अच्छे' और 'बुरे' का। विज्ञान से जुड़ी यह एक अजीब नैतिक धारणा थी जो बच्चों की सोच में नज़र आती थी।

दैनिक जीवन में वैज्ञानिक मानसिकता

आमतौर पर, जो भी व्यवहार और मान्यता प्रचलित थी उसे सही मानने की प्रवृत्ति दिखाई देती है। जब भी मैं किसी बात के सही होने का कारण पूछती थी तो अक्सर यही प्रतिक्रिया मिलती। 'ऐसा ही होता है।' जब किसी बात के बारे में पता लगाना होता तो बच्चे कहते कि हम किसी बड़े से पूछेंगे। सिर्फ नरेश और विपिन ही थे जिन्होंने कहा था कि वे प्रयोग करके देखेंगे। हालांकि नरेश को भी लगता था कि कुछ चीज़ों के लिए तो शिक्षक के पास ही जाना होगा।

"हर एक बात के लिए तो प्रयोग नहीं है।" वो कहता था।

मैंने जानबूझकर एक उदाहरण उनके सामने रखा जिसमें शिक्षक की बताई बात को प्रयोग गलत साबित कर रहा था। दीपक और दिनेश से मैंने पूछा, "वे किस पर भरोसा करेंगे?"

"प्रयोग पर, क्योंकि गुरुजी ने वो तो यह देखने के लिए कहा था कि हमें अपने आप पर भरोसा है कि नहीं।" बहुत सावधानी से दीपक ने प्रयोग की सच्चाई का संतुलन गुरुजी के कथन के साथ बिठा दिया। उसने शिक्षक के मान में कमी नहीं आने दी। यानी, अपने से 'बड़ों' का सम्मान रखना एक निहायत ज़रूरी बात थी। ज्ञान खोजने के तरीकों में यह भी एक ज़रूरी बात थी।

मैंने पाया कि व्यक्तिगत सम्मान व विश्वास के रिश्तों का महत्व सिर्फ

बड़े-छोटों के बीच ही नहीं बल्कि आपस में भी था। जब बच्चे दोस्तों के बीच आपस में बातचीत करते थे तो एक-दूसरे की बातों के प्रति उनके मन में भरोसा कर लेने की प्रवृत्ति नज़र आती थी। दूसरे का कहा आसानी से मान लेने का यह भाव तभी बदलता था जब उनमें मन-मुटाव हो गया हो, और वे एक-दूसरे को 'दुश्मन' समझने लगे हों। ऐसे में दूसरे बच्चे की हर बात पर शक करना सहज था, क्योंकि वह भरोसे के लायक नहीं था, झूठ बोल सकता था। इस स्थिति में बहस होती नज़र आती थी, बच्चे किसी बात को स्थापित करने के लिए तर्क और तथ्य पेश करते पाए जाते थे।

इस पहलू पर गौर करें तो यह समझ में आता है कि लोगों के मन में तभी शक उठता है जब किसी के नैतिक चरित्र पर संदेह हो इसलिए शिक्षक व मित्र की बातों पर प्रश्न सहज नहीं उठते, लेकिन 'दुश्मन' की बातों पर सदैव ही प्रश्न चिन्ह उठते रहते हैं। एक बार फिर मानसिकता में जो लकीर खिंची हुई है, वो सही और गलत के बीच नहीं खिंची, सच और झूठ के बीच खिंची है ऐसा समझ में आता है।

दैनिक जीवन में विज्ञान का ज्ञान

बच्चे के गांव का जीवन किसी भी तरह से स्कूली पढ़ाई के साथ नहीं जोड़ा जाता था। जब उन्हें समझ में आया कि मैं 'स्कूली ज्ञान' से संबंधित सवाल पूछने में उनके गांव का हवाला दे रही हूं तो वे चौंक पड़े 'इस प्रश्न में अलीपुर कैसे आ गया?'

शिक्षक भी कड़ाई के साथ स्कूल और बाहर की बातों को एक-दूसरे से जुदा रखते थे। वे बच्चों के अनुभव को देखने, कहने, बताने को कक्षा की प्रक्रिया में ज़रा भी जगह बनाने की अनुमति नहीं देते थे।

शिक्षक, "चिकने फर्श पर चलना क्यों मुश्किल है?"

पंकज, "जूते फिसल जाते हैं इसीलिए।"

शिक्षक, "नहीं। किताब में जो लिखा है उसके अनुसार उत्तर बताओ।"

शिक्षक विज्ञान की विशेष शब्दावली के उपयोग पर भी ज़ोर दिया करते हैं।

शिक्षक, "ऐसी पांच चीज़ें बताओ जो बल लगने से गति करती हैं।"

पवन–1, "ट्रेन, साइकिल, स्कूटर, बस ....।"

पवन–2, "साइकिल बल लगने से चलती है।"

शिक्षक ने टोका, "गति करती है, ऐसा कहना चाहिए। हम विज्ञान की बात कर रहे हैं।"

एक तरफ तो बच्चों को अपनी स्थानीय हरयाणवी छोड़कर मानक हिन्दी में ही सारी पढ़ाई-लिखाई करनी होती थी। उस पर, विज्ञान की विशेष 'भाषा' बोलने की भी लगातार अपेक्षा की जाती थी। इससे उनके जीवन से पढ़ाई की दुनिया और दूर चली जाती थी।

पाठ्यक्रम से अलग किसी भी बात को दर किनार करने के कई तरीके शिक्षकों के पास थे। सबसे आम तरीका था कि बच्चों की बात की तरफ ध्यान ही मत दो। इससे बच्चों को यह महसूस होता था कि वे जो भी कह रहे हैं वो किसी महत्व का नहीं, किसी मतलब का नहीं।

एक दूसरा तरीका यह था कि बच्चों ने जो भी अलग से कहा उसे संदिग्ध साबित कर दो – "तब तो तुम जन्में भी नहीं थे। तुम्हें पता ही क्या है?" इस तरह के जुमलों से शिक्षक अपनी हैसियत के बल पर बच्चों की बात को गलत करार कर देते थे। बच्चों के लिए इस सबका संदेशा साफ था – कि उन्हें चुप रहना चाहिए।

निष्कर्ष

जॉन डयूई कहते हैं कि जब कोई मूल्य खत्म हो रहा होता है, तब उसकी चर्चा सबसे ज़्यादा होती है। प्राथमिक विज्ञान की किताबों में घोषित विज्ञान के मूल्यों को लेकर यह फैसला सुनाना बेहद कड़वा ज़रूर होगा, पर इसमें कोई शक नहीं कि न तो पाठ्यपुस्तकों की विषयवस्तु न शिक्षकों के सिखाने के तरीके यह आभास देते हैं कि उक्त मूल्य स्कूली विज्ञान की दुनिया में जीवित हैं। बच्चों के बोले हुए वाक्य जाने-पहचाने हैं पर उनमें एक कसक है, और वे बहुत बारीकी से इस बात का खुलासा करते हैं कि बच्चों को विज्ञान में वो सब नज़र नहीं आता, जो वैज्ञानिकों और शिक्षा -शास्त्रियों के लिए सबसे मूल बातें हैं।

इस कटु संदर्भ में हमें पाठ्यक्रमों को सुधारने के लिए उठाए गए कई कदमों का ज़िक्र करना चाहिए, जिनमें होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम एक है, जो अब एकलव्य के ज़िम्मे है। यह कार्यक्रम 'विज्ञान करने' का मौका बच्चों को देता है और इस तरह स्कूली विज्ञान को एक नया आधार देता है। इसमें प्रयोग, अवलोकन और विश्लेषण करने की भूमिका प्रमुख हो जाती है क्योंकि सीखने का मतलब खुद बच्चों द्वारा ज्ञान की संरचना करने से लिया गया है।

नई किताबों व प्रयोग सामग्री के अलावा अनिवार्य तौर पर शिक्षकों का प्रशिक्षण किया जाता है ताकि वे

इस नए नज़रिए से विज्ञान 'पढ़ा' सकें

यह कार्यक्रम मिडिल स्कूल स्तर के लिए है यह सच है। यह सोचना सही ही होगा कि प्रायमरी स्तर पर विज्ञान का तरीका और विषयवस्तु अलग होनी पड़ेगी।

ऐसे कार्यक्रम विकसित करने की ज़रूरत है जो प्रायमरी स्तर पर भी विज्ञान सीखने की क्रिया को ऐसा बनाएं कि वह बच्चे के अपने परिवेश से जुड़ पाए, कि बच्चे ज्ञान की संरचना खुद कर सकें।

यशपाल समिति की रिपोर्ट ने यह दिखाया है कि स्कूली बच्चों पर असल बोझ जो है वो न समझने का बोझ, निरर्थकता का बोझ है। बच्चों की बातों से भी इस बोझ की तकलीफ झलक जाती है। स्कूलों की इस असलियत को सुधारना एक निहायत ज़रूरी मुद्दा है।

पदमा सारंगपाणि: दिल्ली विश्वविद्यालय से शिक्षा में शोध करने के बाद अब 'दिगंतर' जयपुर में काम कर रही हैं। दिल्ली विश्वविद्यालय के 'सेंटर फॉर साइंस एज्यूकेशन एंड कम्यूनिकेशन' के तहत चल रहे प्राथमिक शाला में गणित शिक्षण के प्रयोग के साथ भी संलग्न रही हैं।

मूल लेख अंग्रेज़ी में। **अनुवाद: रश्मि पालीवाल** – रश्मि एकलव्य के सामाजिक अध्ययन कार्यक्रम से संबद्ध हैं।

मराठी संदर्भ

अब संदर्भ मराठी में भी उपलब्ध है। दो नमूना अंक अभी तक प्रकाशित हो चुके हैं। आप अगले अंक से मराठी संदर्भ की सदस्यता ले सकते हैं। मराठी संदर्भ भी द्वैमासिक है और इसका सदस्यता शुल्क 100/– रुपए है। सदस्यता शुल्क आप मनीऑर्डर से भेज सकते हैं।

सदस्यता शुल्क भेजने अथवा और अधिक जानकारी के लिए निम्न पते पर सम्पर्क करें।

'मराठी संदर्भ'
द्वारा, अमृता क्लिनिक
संभाजी पुल कॉर्नर, कर्वे रोड़
पुणे, महाराष्ट्र पिन: 411004